5

बाल विकास के लिए खेल-खेल में शालापूर्व शिक्षा

कृष्ण चंद्र चौधरी *

बालमन के सहज विकास के लिए आवश्यक है कि आरंभिक स्तर पर बच्चों को औपचारिक शिक्षा न देकर उन्हें खेल-खेल में ही चीज़ों की अनुभूति करवाते हुए विकास के अवसर दिए जाएँ। ऐसा करना न सिर्फ़ बच्चों को आनंद के साथ सीखने से जोड़ेगा, बल्कि अपने वातावरण की समझ बनाने में भी सहायक होगा। उक्त आलेख बच्चे के संपूर्ण विकास में खेलों के महत्त्व को चरितार्थ करता है।

बाल-जीवन में शालापूर्व शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस दौरान बच्चे के व्यवहार, सोच-विचार की प्रक्रियाओं, भावनाओं और रवैये में परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार बच्चों के उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास की नींव रखी जाती है। इस क्रम में बच्चे में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे ही उसके मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक एवं प्रवृत्यात्मक व्यवहार का विकास ही नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार का भी विकास होता है। फलतः शालापूर्व शिक्षा के अंतर्गत बच्चे को प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही सामाजिक, भावनात्मक, सृजनात्मक, संज्ञानात्मक, रचनात्मक, शारीरिक, मानसिक तथा सौंदर्यपूर्ण विकास के लिए सहज, आनंदपूर्ण व उत्प्रेरक परिवेश देने और बाल विकास सुनिश्चित करने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण प्रदान करना चाहिए। बच्चों के व्यक्तित्व का अधिकतम विकास इन्हीं वर्षों (3-6 आयुवर्ग) में होता है, जो कि बच्चों की शालापूर्व शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति करता है। बच्चे अपने जीवन के इस चरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया से गुज़रते हैं, जिसमें बौद्धिक प्रेरणा प्रदान करके वाँछनीय अभिवृत्तियाँ विकसित करने में मदद मिलती है।

मस्तिष्क और शरीर के स्वस्थ विकास के लिए बच्चों की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं, जैसे अच्छा भोजन, खेलना, पूरा विश्राम व नींद तथा स्वास्थ्य की ओर समुचित ध्यान। बच्चों के संपूर्ण विकास (क्रिया-विधि, खोज, चिंतन, अवधारणा तथा अन्वेषण) के लिए खेलों की आधारभूत सुविधाएँ अनिवार्य रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। सभी बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शालापूर्व शिक्षा का प्रावधान सुनिश्चित करना चाहिए, जिसके फलस्वरूप

* *संकाय सदस्य,* राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान, इंदौर - 453112

बच्चों का सर्वांगीण विकास हो पायेगा। उपरोक्त बिंदुओं पर ध्यान देना बच्चों के समग्र विकास में सहायक सिद्ध होता है।

शालापूर्व शिक्षा के विभिन्न आयामों के तहत बच्चों के सर्वांगीण (समग्र/संपूर्ण/चहुँमूखी) विकास के लिए शारीरिक व गतिशीलता विकास, भाषा विकास, बौद्धिक (चिंतन/मनन) विकास, ज्ञानेन्द्रिय व भावनात्मक विकास, सामाजिक-व्यक्तिगत विकास, सृजनात्मक व सौंदर्यबोध और संज्ञानात्मक व रचनात्मक विकास आदि के माध्यम से खेल-खेल में जानकारी प्रदान करना है। उपरोक्त कोई भी विकास के लिए गतिविधियाँ कराते समय सभी बच्चों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें व हाव-भाव (चहल-कदमी) के साथ करें। साथ ही आयुवर्ग के अनुसार ही गतिविधियाँ कराएँ और बच्चों की रुचि को जागृत करें। गतिविधियाँ रुचिपूर्ण विषयवस्तु के अनुरूप करवाएँ।

जिसमें बच्चों के साथ सरल व सुबोध भाषा में स्वतंत्र बातचीत करें। इस क्रम में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास को ध्यान में रखते हुए गतिविधियाँ कराएँ। फलस्वरूप खेलों के द्वारा ही सृजनात्मक विकास, तर्क शक्ति व स्मरण शक्ति का विकास हो पायेगा और बच्चों के शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास की नींव डालने में यह सहायक होगा।

बौद्धिक विकास

बहुत सी खेल-क्रियाएँ ऐसी हैं, जिनसे बच्चे को नए विचार व अवधारणाएँ मिलती हैं और उनकी सोचने की शक्ति का विकास होता है। जीवन

के बेहतर निर्माण हेतु खेल ही बौद्धिक विकास का सृजनात्मक कारण है। बच्चे के मानसिक विकास के लिए तरह-तरह की गतिविधियाँ निरंतर जारी रखनी चाहिए। इससे बच्चे को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने में विशेष मदद मिलती है। चूँकि बच्चे ही हमारे सबसे मूल्यवान संसाधन हैं। माता-पिता, भाई-बहन और परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा उद्दीपनपूर्ण वातावरण व अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करनी चाहिए, जिससे बच्चे की बौद्धिक विकास की प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहे। इस तरह बच्चे को बौद्धिक विकास का आधार प्रदान किया जाता है। बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें हम बहुत आसानी से इकट्ठा कर सकते हैं, जैसे-सीपियाँ, शाखाएँ, पत्ते, कंकड़-पत्थर, बीज, दियासलाई की डिब्बियाँ, बोतलों के ढक्कन और बटन आदि। इस प्रकार की अन्य चीज़ें, जिन्हें गणक की संज्ञा दी गई है, ये खेल क्रियाएँ बड़ों के संरक्षण में बहुत उपयोगी हो सकती हैं।

विज्ञान और परिवेश

बच्चे हर समय अपने परिवेश (आस-पास का वातावरण) से कुछ न कुछ सीखते रहते हैं।

उनमें जिज्ञासा होती है। इसलिए वे हर चीज़ या घटना को ध्यान से देखते हैं और उनके संबंध में सोचते हैं। इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा में माता-पिता, आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और शिक्षक काफी सहायता कर सकते हैं। मुख्य रूप से बच्चों को घर में बड़े बहन-भाई, आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की देख-रेख की ज़रूरत होती है। आप उन्हें सतर्क रहने के लिए, चीज़ों को ध्यान से देखने व सुनने के लिए तथा सोचने-समझने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। बच्चों को मानसिक रूप से सतर्क करना और उन्हें विद्यालय के लिए तैयार करना है। विद्यालयों में वैज्ञानिक तरीके से शिक्षा दी जाती है और उसके लिए मानसिक सतर्कता बहुत ज़रूरी है। सीखने का वैज्ञानिक ढंग सिखाना है। विज्ञान सीखने की एक प्रक्रिया है। पूछताछ, स्वतंत्र वार्तालाप, चर्चा, व्यावहारिक प्रयोग, चिंतन और खोज से सीखना ही विज्ञान है। जो भी चर्चा करें उसके मुख्य केंद्र में बच्चे को रखें। इसके लिए आवश्यक है: अवलोकन या ध्यान से देखना, देखे हुए तथ्यों की सूची बनाना, प्रश्न पूछना, उत्तरों का अनुमान लगाना और समझ-बूझ से उत्तरों की खोज करना। घटनाओं की जाँच करके (प्रयोगों से) उत्तरों की खोज करना और समझना कि घटनाएँ क्यों और कैसे होती हैं। उदाहरण के रूप में आप जानते हैं कि, पौधे बीज से उगते हैं, उबलता पानी भाप में बदलता जाता है, पक्षी अंडों से निकलते हैं, धूप में चीज़ें जल्दी सूखती हैं, जब कोई चीज़ प्रकाश की राह में आती है

तो उसकी परछाई पड़ती है, साँस लेने से हवा शरीर के अंदर जाती है, परंतु हम उसे देख नहीं सकते, सिर्फ़ महसूस अथवा एहसास कर सकते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान के अनुभवों का महत्त्व सभी को ज्ञात है। प्रकृति में घटित होने वाली घटनाओं में जो कार्य कारण भाव है, उसे खोजकर सत्य की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। पेड़ से फल का नीचे गिरना, गीले कपड़ों का सूखना, रोटी का फूलना, बर्फ का पिघलना आदि के कारणों को बच्चे जानना चाहते हैं। बच्चे विविध वस्तुओं का

निरीक्षण करते हैं, तोड़-फ़ोड़कर फिर से बनाने की कोशिश करते हैं, वे बहुत-से प्रयोग करते हैं, निष्कर्ष तक पहुँचने का अथक प्रयास करते हैं। उनकी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति का विकास करने के लिए बाल-शाला में बच्चों को विविध प्रकार के अनुभव प्राप्त करने का अवसर देना आवश्यक है। इसी से उनकी सोचने, समझने, चिंतन करने व निर्णय लेने की शक्ति का विकास और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण होगा।

भाषा विकास

छोटे बच्चे अपने परिवेश में निरंतर भाषा सीखते रहते हैं, किंतु आप उन्हें और अच्छी तरह भाषा सिखा सकते हैं। पाठशाला जाने पर उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है, जो कि भाषा विकास के लिए एक मील का पत्थर साबित होता है। भाषा समझना और अच्छी तरह बोलना आ जाना चाहिए, अपने विचारों और भावों को भी अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करना आना चाहिए। बच्चे भाषा कई प्रकार से सीखते हैं जैसे- सुनने से, अनुकरण से, दोहराने व बातचीत करने से, अभ्यास से, दूसरों के प्रोत्साहन से आदि। इस प्रकार भाषा विकास के लिए बच्चों को कहानी (दैनिक क्रियाकलाप, नैतिक शिक्षा, शेर, हाथी, खरगोश, बंदर आदि), गीत, कविता (गंगा, कोयल, चंदामामा, विनती, फूल, झंडा, जानवरों आदि) सुनाते समय सुनियोजित व सुव्यवस्थित तरीके के साथ ही हाव-भाव प्रभावी तरीके से (मनमोहक) होना चाहिए। इसके साथ ही बच्चों से मौखिक निबंध प्रारंभ कर देना चाहिए। और बच्चों को घरेलू (पालतू), जंगली व जल में रहने वाले जानवरों के संदर्भ में जानकारी देना एवं उससे रू-ब-रू करना चाहिए, जो कि चित्र के माध्यम से हो सकता है या आस-पास के परिवेश में अथवा चिड़ियाघर (वन्य पशु एवं पक्षी प्राणी संग्रहालय) में जाकर आदि। जिससे भाषा विकास में गुणात्मक परिवर्तन होता है।

ज्ञानेन्द्रिय व भावनात्मक विकास

बच्चे जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनका शारीरिक व मानसिक विकास भी होता रहता है। वे निरंतर कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। वे सीखते हैं, जैसे- देखने से, सुनने से, छूने से और इधर-उधर घूमने से (नैसर्गिक परिभ्रमण), चखने से, सूंघने से और स्वतंत्र आंतरिक व बाह्य खेलों से। इन क्रियाओं द्वारा बच्चों को भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं। वे कभी अपने अनुभवों पर सोचते हैं और कभी उन्हें अलग-अलग तरीकों से दोहराते हैं। अपने अनुभवों को दोहराने में भी उन्हें नए अनुभव होते हैं। वे तरह-तरह की कल्पना करते हैं और इससे भी उन्हें नए अनुभव होते हैं। वे अपने भावों व विचारों को अभिव्यक्त करना और उन्हें दूसरों तक पहुँचाना भी सीखते हैं।

संज्ञानात्मक विकास हेतु रचनात्मक क्रियाएँ

बच्चों को रचनात्मक खेल खेलना अर्थात् अपने हाथों से नयी-नयी आकृतियाँ बनाना बहुत अच्छा लगता है। रचनात्मक खेल खेलते समय बच्चे अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपने परिवेश अर्थात् आस-पास की खोज करते हैं, उसे देखते और समझते हैं। इससे उनकी जानकारी बढ़ती है, उन्हें

नए अनुभव होते हैं, उनकी कल्पना का विकास होता है। नयी-नयी चीज़ों की रचना द्वारा उनके भावों और विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है, उनकी छोटी व बड़ी माँसपेशियों में तालमेल बढ़ता है और उनकी अपनी गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ता है। इसलिए हम जब भी बच्चों के लिए ''कला या हस्त कौशलता'' की बात कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य केवल उनके कुछ करने व पदार्थों से आकृति बनाने से होता है। इसीलिए उन्हें प्राय: 'रचनात्मक क्रियाएँ' कहा जाता है, परंतु हमें यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को वही करना अच्छा लगता है, जिसे वे खुद कर सकते हैं अर्थात् उन्हें खुद करके सीखना अच्छा लगता है। रचनात्मक क्रियाओं द्वारा हम बच्चों की क्षमताओं को विकसित करने में सहायक हो सकते हैं- उन्हें सिखा सकते है: अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, त्वचा व जीभ) का लाभ उठाना, नए अनुभव प्राप्त करना, अपनी कल्पना का उपयोग करना, अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करना, हाथों, अँगुलियों और माँसपेशियों को इस्तेमाल करना, कला-कौशल का अभ्यास करना, हाथों और नेत्रों में सामंजस्य स्थापित करना, सुंदरता को पहचानना और उसका आनंद उठाना व प्रफुल्लित होना आदि।

बच्चा जब जन्म लेता है, तब उसके लिए सभी चीज़ें नयी होती हैं, वह वातावरण से अनभिज्ञ होता है। जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जाती है, वह स्वत: प्रयत्न से अपने ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अलग-अलग अनुभव प्राप्त करता है, जिज्ञासावश वह बड़ों व प्रौढ़ों से प्रश्न करके वातावरण से परिचय प्राप्त कर लेता है (प्रतिदिन के जीवन में बच्चा देखकर, सुनकर, चखकर, सूँघकर स्पर्श द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। उदाहरण- माँ की आवाज़ पहचानने लगता है, उसके स्पर्श में आनंद का अनुभव करता है और स्वाद को जानने लगता है।

बच्चा जब किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करता है तो निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाई जानी चाहिए। संज्ञानात्मक विकास के लिए आवश्यक प्रारंभिक कौशल - 1. देख कर, अनुभव प्राप्त करना, 2. सुनना व समझना, 3. स्पर्श में भेद जानना, 4. सूँघना

तथा गंध में भेद पहचानना और 5. स्वाद पहचानना इत्यादि। विधियों के प्रयोग से किसी भी विषय का ज्ञान बच्चों को सहजता से हो जाता है। संज्ञानात्मक विकास की गतिविधियाँ – स्मृति–निरीक्षण, अंतर पहचानना, जोड़ी जमाना, रंगों को पहचानना, वर्गीकरण, क्रमबद्धता, कमियाँ ढूँढ़ना, सह–संबंध, घटता–क्रम, आकृति–ज्ञान, आकृति जमाना (फूलों, जानवरों, सब्ज़ियों, हिंदी व अंग्रेज़ी अक्षरों का ज्ञान आदि) समस्या समाधान आदि। बच्चों के प्रारंभिक प्रत्यय – अध्याय, रंग, स्थान, समय, ताप, अंक पूर्व प्रत्यय और सजीव–निर्जीव आदि। संज्ञानात्मक विकास के लिए पंचेन्द्रियों का ज्ञान होना अत्यंत ज़रूरी है। दर्शनेन्द्रिय बच्चों की सभी इन्द्रियों में सबसे प्रभावशाली होती है (अत: हम दर्शनेन्द्रिय से संबंधित क्रियाओं के बारे में सोचें)। इस इन्द्रिय से आकार एवं रंग का बोध होता है। फलत: बच्चा जब जन्म लेता है तभी से सुनने की क्षमता उसमें होती है। बड़े होने के साथ–साथ ही वह भिन्न–भिन्न आवाज़ों में भेद पहचानने लगता है। बच्चा सर्वप्रथम अपनी माँ की आवाज़ को पहचानता है। उसके पश्चात् आस–पास के व्यक्ति, प्राणी, पक्षी आदि की आवाज़ धीरे–धीरे बच्चा पहचानने लगता है।

सामाजिक–व्यक्तिगत विकास

सामाजिक–व्यक्तिगत विकास का अर्थ है, अच्छी आदतों, अच्छे व्यवहार, सही अभिवृत्तियों और सही मानव मूल्यों का विकास। इस क्रम में सामाजिक विकास के लिए जीवन के आरंभिक वर्ष विशेष महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि बाल्यकाल के अनुभवों का प्रभाव व्यक्ति में जीवन भर या बहुत लंबे समय तक बना रहता है। जीवन के इन्हीं वर्षों (3–6 आयुवर्ग) में बच्चे अपने परिवेश से अनेक आदतें, व्यवहार, आचरण के तौर–तरीके, अभिवृत्तियाँ और मूल्य ग्रहण करते हैं और समाज के साथ सामंजस्य और तालमेल स्थापित करते हैं। अत: बच्चों का 92 प्रतिशत विकास इन्हीं वर्षों में होता है। इसीलिए छोटे बच्चों में अच्छी आदतों और सही अभिवृत्तियों को विकसित करना बहुत ज़रूरी है। बच्चों पर उनके परिवेश, परिवार और संगी–साथियों का बहुत प्रभाव पड़ता है, लेकिन बालगृह और बाल–पालन केंद्र भी अच्छी आदतों और मूल्यों को सिखाने में काफी सहायक हो सकते हैं। इस काल–क्रम में नैतिक शिक्षा भिन्न–भिन्न माध्यमों से बच्चों के सामाजिक–व्यक्तिगत विकास हेतु प्रदान की जाती है। इस प्रकार बच्चे के चरित्र–निर्माण में शालापूर्व शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शालापूर्व शिक्षा बच्चे के जीवन में मज़बूत सामाजिक–व्यक्तिगत विकास की नींव डालती है और वह अन्य बच्चों के साथ प्यार से रहना सीखता है।

व्यवहार परिवर्तन

बच्चे केवल अपनी गतिविधियाँ यानी अवलोकन, अनुकरण, दोहराने या संतोषजनक क्रियाओं से ही नहीं सीखते, उनके व्यवहार पर पुरस्कार और नियम प्रणाली का भी प्रभाव पड़ता है। कभी–कभी बच्चों के साथ पुरस्कार या अनुशासन का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है, जिससे वे सही और गलत में अंतर

करना सीखते हैं, तथापि यह कहा जा सकता है कि शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था वही है जो पुरस्कार और नियम प्रणाली (अनुशासन) दोनों से पूर्ण रूप से मुक्त हो अर्थात् अनुकूल वातावरण में ही बच्चे को व्यवहार परिवर्तन की सही रूपरेखा प्रदान की जा सकती है इसके साथ ही माता-पिता का वात्सल्य प्रेम और शिक्षकों का सकारात्मक सहयोग, बच्चों के मनो-सामाजिक व व्यवहार परिवर्तन में सहायक सिद्ध होता है। इस क्रम में बच्चे जीवनशैली, व्यावहारिक, आधारशिला, सामाजिक समायोजन, सामाजिक संबंध व व्यवहार और भावना को व्यक्त करना सीखने लगते है। इस तरह बुनियादी तौर पर वे भौतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक गुण, सामुदायिक और जैविक वातावरण में अपने आप ही समन्वय स्थापित करने लगते हैं। इसके उपरांत बच्चे संपूर्ण विकास की ओर अग्रसर होते है। बच्चों के व्यवहार परिवर्तन में शाब्दिक व मौखिक संवेदना का बोध होगा, जिससे बच्चे शालीन व भावनात्मक रूप से मज़बूत एवं दृढ़ होंगे।

संपूर्ण बाल विकास

बच्चों के सामाजिक-भावनात्मक, शारीरिक, भाषायी कौशलों, बौद्धिक, सृजनात्मक अभिव्यक्ति, सौंदर्यानुभूति एवं खेल गतिविधियों के विकास से प्रारंभिक बाल्यावस्था में शिक्षा का गुणात्मक उन्नयन हो पायेगा। खेल बच्चों के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकता है। बच्चे खेल-खेल में काफी कुछ सीख लेते हैं। बाल विकास खेल-खेल के लिए और आनंद के लिए हो। इसके तहत् खेल-खेल में प्राणियों की चालों को चलकर और भारीपन या हल्केपन से आवाज़ को निकालकर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रिया बच्चों से कराएँ। जिससे खेल के द्वारा बच्चे की छोटी और बड़ी माँसपेशियों का विकास होता है, मस्तिष्क का विकास होता है और वह अन्य बच्चों के साथ प्यार से रहना सीखता है। खेल बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, और उसे जीवन की भावी महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए तैयार करते हैं। इसके साथ-साथ बच्चों के सर्वांगीण विकास की नींव की आधारशिला शालापूर्व शिक्षा के दौरान ही तैयार की जाती है। इस तरह आने वाले समय में बच्चों में निश्चित ही आत्मविश्वास का संचार होगा और भावनात्मक नियंत्रण व संतुलन कायम कर सकेगा। बच्चों में मनो-सामाजिक परिवर्तन, स्वतंत्र रूप से खेलने से उत्पन्न होता है, जिससे उनके व्यक्तिगत विचारों का शुद्धिकरण होता है, इसके लिए अच्छे सामाजिक समायोजन एवं आदर्श वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। इसके फलस्वरूप नैसर्गिक रूप से बच्चों के व्यवहार परिवर्तन में मनो-सामाजिक विचार का आधार स्तंभ तैयार हो सकेगा। वस्तुतः सीखना तभी संभव होगा जब बच्चों को आत्मीयतापूर्ण व्यवहार मिले, खेल-खेल में शिक्षण प्रक्रिया रोचक व सुरुचिपूर्वक हो, बच्चों की कमियों को शारीरिक या मानसिक दंड देकर

नहीं, बल्कि स्नेह से सुधारा जाए। बच्चे को स्नेहपूर्ण व्यवहार मिले तो सीखना उसके लिए आनंदमय बन जाता है। शालापूर्व शिक्षा बच्चों की बुनियाद तैयार करता है, जो कि बच्चों को स्कूल से पूर्व मानसिक रूप से तालमेल बैठाने का कार्य करता है। इसलिए बच्चों को स्कूल से जोड़ने से पहले शिक्षक की ज़िम्मेदारी काफी बढ़ जाती है। जिससे आने वाले समय में बच्चों को गुणात्मकपूर्ण शिक्षा दी जा सकेगी। बच्चों को एक बेहतर भविष्य सुनिश्चित करने के लिए शालापूर्व शिक्षा का अमूल्य योगदान होता है, जो कि खेल-खेल में बच्चों के समग्र विकास के पूर्व प्रारंभिक रुचि को शिक्षा की बुनियाद की ओर अग्रसर करेगा। खेल-खेल में शालापूर्व शिक्षा बच्चों का मनोरंजन करती है और प्रकृति के साथ उनका रिश्ता भी बनाती है। और देखा गया है कि बच्चे जानवरों, पेड़-पौधों, चिड़िया, फूल-पत्तियों, पहाड़ों, नदियों, समुद्रों आदि को बेहद पसंद करते हैं। जो कि कालांतर में एक सृजनशील व्यक्तित्व का निर्माण करेगा। इसके फलस्वरूप सर्वप्रथम शालापूर्व शिक्षा उपलब्ध कराने पर ज़ोर दिया जा रहा है, ताकि शिक्षा का सारा तंत्र पूरे राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके और राष्ट्र निर्माण में एक मील का पत्थर साबित हो। भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग शालापूर्व शिक्षा के महत्त्व को समझने लगा है और इसके सकारात्मक परिणाम व बाल विकास की आवश्यकता के महत्त्व को भी जानने लगा है, जो कि आने वाले समय में अच्छे मानव संसाधन विकास में अपनी उपयोगिता सिद्ध करेगा और राष्ट्र की क्षमता बढ़ाएगा। संक्षेप में, मानव शिशु इस धरती पर सबसे तीव्र गति से सीखने वाला प्राणी है। जन्म लेते ही तेजी से सीखने की योग्यता मनुष्य के बच्चे की अनूठी विशेषता है। आरंभिक वर्ष जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधि है, क्योंकि इसी समय गतिशीलता, संवेदी, संज्ञानात्मक, भाषाई, सामाजिक और व्यक्तित्व के विकास के लिए नींव रखी जाती है। शालापूर्व शिक्षा में बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण और चहुँमुखी विकास को ही बुनियादी तौर पर लक्ष्य माना जाता है। स्वस्थ व सकारात्मक माहौल में खेल-खेल में उन्हें बहुत कुछ सिखाया-पढ़ाया जा सकता है, इससे बच्चा का बौद्धिक विकास होता है। इसके उपरांत बच्चे सीखने के प्रति तत्परता व कटिबद्धता दिखाता है। सीखने वाली शैली के साथ भाषा का माध्यम अधिक सुरुचिपूर्ण, प्रभावोत्पादक और सुगम हो तो इसका उनके मनो-मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शालापूर्व (प्रारंभिक बाल्यावस्था) शिक्षा बच्चों के विकास के लिए है, इसलिए उन्हें केंद्र में रखकर ही खेलों के संपूर्ण माध्यम से आधारभूत पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्चा और ज्ञान की पूर्ति करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

प्रसन्न, के., 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005: एक विमर्श योजना,* नयी दिल्ली, सितंबर 2005.

शालापूर्व शिक्षा पाठ्यक्रम रूपरेखा (ड्राफ्ट)-2012, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार (2012).

स्वामीनाथन, एम., 1987. *बच्चों के लिए खेल-क्रियाएँ,* यूनिसेफ़, नयी दिल्ली 1987.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 2005.

नेशनल करिकूलम फ्रेमवर्क फ़ॉर टीचर एजुकेशन: टूवर्ड्स प्रिपेयरिंग प्रोफेशनल एंड ह्यूमन टीचर-2009, नयी दिल्ली - नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन 2009.

नेशनल नॉलिज कमीशन रिपोर्ट, नयी दिल्ली-गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया 2007.

❑❑❑